International Journal of Applied Research 2019; 5(5): 280-281

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(5): 280-281
www.allresearchjournal.com
Received: 14-03-2019
Accepted: 15-04-2019

अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

प्रसाद के नाटकों में स्त्री–पात्रों का सामाजिक परिवेश और संघर्ष

अर्चना कुमारी

सारांश
प्रसाद के नाटकों में स्त्रियाँ अनेक रूपों में हमारे सामने दिखाई देती हैं। अब बात आती है परिवेश और संघर्ष की। परिवेश वह चीज है जिसमें रह कर मनुष्य जीवन–यापन करते हैं और वह मनुष्य के कार्य, आचरण और व्यवहार को प्रभावित भी करता है। परिवेश को शब्दार्थ–विचार कोश में इस प्रकार परिभाषित किया गया है–'परिवेश का पहला अर्थ है –घेरा या परिधि और दूसरा अर्थ है– वह आभा–मण्डल या प्रभा–मण्डल जो उज्ज्वल पदार्थों के चारों ओर और बड़े–बड़े महापुरुषों के मुख–मण्डल के चारों ओर या तो दिखायी देता है या कल्पित कर लिया जाता है, परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका अर्थ होता है–आस–पास की वे अवस्थाएँ आदि जिनका मनुष्य के कार्यों और व्यवहारों पर परिचालक प्रभाव होता है। इसमें आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का भी अन्तर्भाव माना जाता है, जैसेः जिस देहाती परिवेश में उनकी बाल्यावस्था और युवावस्था बीती थी, उसमें उनके लिए किसी प्रकार का औद्योगिक, वैज्ञानिक या शैक्षणिक उन्नति के लिए कोई अवकाश नहीं था।। अर्थात् वे वहाँ रहकर अच्छी या विशेष उन्नति नहीं कर सकते थे। जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों आदि के प्रसंग में इस शब्द के अन्तर्गत उन जलाशयों, पर्वतों, वनों आदि का भी अन्तर्भाव हो जाता है जिनके आस–पास या बीच में रहकर वे जीवन बिताते या विचरण करते हैं।'

मुख्य शब्द : सामाजिक परिवेश, संघर्ष, नाटकों में स्त्री–पात्रों

प्रस्तावनाः
प्रसाद के नाटकों के स्त्री पात्र मुख्यतया गुप्तकालीन परिवेश से आते है। उपर्युक्त अंश में बताया गया है कि परिवेश मनुष्य के आचरण को प्रभावित करता है। परिवेश पर्यावरण और परिथिति दोनों का सुचक है। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। अर्थात् जैसी परिस्थितियाँ होंगी, उसी के अनुरूप मनुष्य का स्वभाव निर्मित होता है। यदि व्यक्ति राजसी परिवेश में पला–बढ़ा है तो उसके हाव–भाव, रहन–सहन और विचार राजाओं जैसे होंगे। जैसे–धुड़सवारी, तलवारबाजी, राजकाज का संचालन आदि बातें उसके स्वभाव में विरासत में ही मिली होंगी। यदि उसका परिवेश निर्धन समुदाय का है तो वह रोटी–कपड़ा–मकान की जुगाड़ में ही सोचता–विचारता रहेगा।[1]
चूँकि प्रसाद के अधिकतर नाटकों की कथावस्तु गुप्तकालीन है। इसलिए इनके स्त्री–पात्रों पर दृष्टि ले जाने से पहले गुप्तकालीन स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। गुप्तकाल की स्त्रियों के सम्बन्ध में इतिहासकार रोमिला थापर का कहना है–'साहित्य और कला में नारी का आदर्शमय चित्रण किया गया है, परन्तु व्यवहार में उसका स्थान स्पष्ट रूप से गौण था। उच्च वर्ग की स्त्रियों को थोड़ी शिक्षा जरूर दी जाती थी, परन्तु उसका उद्देश्य इतना ही था कि वे बुद्धिमत्रापूर्वक वार्तालाप करने के योग्य बन सकें, सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिए नहीं। महिला दार्शनिकों और विदूषियों की चर्चा भी मिलती है, लेकिन ऐसे दृष्टान्तं बहुत कम हैं। स्त्रियों की सामाजिक मर्यादा को लेकर इस काल में कुछ ऐसी बातें सामने आई जो बाद की शताब्दियों में उसकी विशेषता बन गई। अल्पायु में और बहुधा यौवनारम्भ से पूर्व भी विवाहों का समर्थन होता था। यह भी कहा जाता था कि विधवा को न केवल पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहिए बल्कि उसके लिए श्रेयस्कर है कि वह अपने पति के साथ चिता में जलकर भस्म हो जाये अर्थात् सती हो जाये।...परन्तु ऐसी स्थिति में विधवाओं का चिता में जल जाना एक पवित्र, धार्मिक कार्य नहीं समझा जाता था। सती होने का प्राचीनतम साक्ष्य 510 ई॰ में मिलता है। यह प्रथा मध्य भारत तथा आगे चलकर पूर्वी भारत एवं नेपाल के उच्च वर्णों तक ही मुख्यतया सीमित थी। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार नारी धर्म का स्वेच्छया पालन न करने वाली स्त्रियों को ही पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी, और ये या तो भिक्षुणी बन जाती थीं, या नाटक मण्डली में सम्मिलित हो जाती थीं, अथवा वीरांगना और वेश्या बन जाती थीं।'[2]
इतना ही नहीं गुप्तकाल में ही अधिकांश धर्मसंहिताओं ने मनु के'धर्मशास्त्र' को आधार मानकर उसकी व्याख्याएँ की।

याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति और कात्यायन जैसी महत्त्वपूर्ण स्मृतियाँ भी गुप्तकाल की ही देन है। इतना होने के बाद हम यह आसानी से कह सकते हैं कि गुप्तकालीन समाज एक सामन्ती सोच वाला समाज था जिसमें स्त्रियों और शूद्रों को अधिकारहीन रखा गया था। सामन्तवादी व्यवस्था का मतलब ही होता है ऊँच–नीच, असमानता, भेदभाव से पूर्ण व्यवस्था। ऐसे इतिहास से यदि कथावस्तु का चयन होगा तो जाहिर है स्त्रियों का सामाजिक परिवेश कैसा होगा और संघर्ष भी परिवेश पर ही निर्भर करता है। ऐसा माना जाता है कि साहित्य में जो चित्रण होता है वह अप्रत्यक्ष ही सही लेखक के निजी जीवन से सम्बन्धित होता है।[3] जिस तरह साहित्य में लेखक का देखा हुआ और कल्पना किया हुआ समाज सामने आता है, उसी तरह साहित्य में रचनाकार द्वारा रचित पात्रों का व्यक्तित्व भी उभरता है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जितने भी स्त्री–पात्रों का चयन और चित्रण किया है उनका सम्बन्ध कहीं–न–कहीं उनके जीवन से अवश्य रहा होगा। उनके सम्पर्क में जितनी स्त्रियाँ आईं उसका उन्होनें अपनी रचनाओं में चित्रण किया। उन्होनें पत्नियों के रूप में ही तीन स्त्रियों का चित्रण देखा था। प्रसाद जी का जन्म एक सम्पन्न व्यापारी परिवार में सुँघनी साहू के यहाँ हुआ था। फिर यह सुर्ती का व्यापार बनारस जैसे शहर में था जो धर्म की नगरी मानी जाती है। पण्डे–पुजारियों, तांत्रिको और बाहर से तीर्थाटन को आए हुए सामन्तों से इनकी मुलाकात हुई होगी। बनारस धर्म की नगरी, संस्कृति, कला और प्राचीन शिव की नगरी मानी जाती है। प्रसाद जी बनारस छोड़कर प्रेमचन्द्र वगैरह की तरह कहीं अन्यत्र गए भी नहीं। इसीलिए बनारस का जैसा परिवेश था उसका प्रभाव प्रसाद पर पड़ा और उन्होंने उसी के अनुरूप कथावस्तु चुनी और पात्रों का चित्रण किया।[3]

उनके सभी नाटकों में राजा, रानी, राजदरबारी, दास–दासियाँ, नर्तकी, योद्धा, मंत्री, धार्मिक–तांत्रिक इत्यादि पात्र हैं। ये सभी सामन्ती परिवेश की ही उपज है जिसमें लड़ाइयाँ या तो सुन्दर स्त्री के लिए हुआ करती थी या राज्य–विस्तार के लिए। स्त्री सिर्फ भोग की वस्तु थी। इसके सिवाय कुछ नहीं। उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं था। ऐसा था गुप्तकालीन समाज, किन्तु रचनाकार रचना में अपनी कल्पना का सहारा लेकर उसे उपयोगी कृति बनाता है। यदि वह हू–ब–हू चित्रित कर दे, तो फिर वह इतिहास ही रहेगा, साहित्य नहीं बन पाएगा। प्रसाद जी एक साहित्यकार थे। उन्होंने गुप्तकालीन इतिहास की तत्कालीनता में समकालीनता का समावेश किया। पहले जहाँ स्त्रियों के अस्तित्व का संकट था वहीं उनके स्त्री पात्र अस्मिता के लिए प्रयासरत दिखाई पड़ते हैं। आज के स्त्री आन्दोलन में भी अस्तित्व की बात समाप्त हो गई है। अब अपनी अस्मिता के लिए महिलाएँ संघर्षरत है।[4]

प्रसाद की प्रयोगकालीन चार एकांकियों (सज्जन, कल्याणी परिणय, करूणालय और प्रायश्चित) में स्त्रियों की बहुत प्रभावी भूमिका नहीं है। अतः इन पर बात न करके शेष नाटकों पर विचार करना श्रेयष्कर होगा।

नाटक 'राज्यश्री' ऐतिहासिक परिवेश से लिया गया है। इसकी प्रमुख स्त्री–पात्र राज्यश्री सम्राट हर्षवर्धन की बहन है। चूँकि यह राजशाही परिवेश में पली–बढ़ी है। इसलिए इसमें जातीय स्वाभिमान का होना स्वाभविक है। जिसके अन्दर जातीय स्वाभिमान है वह आत्मसम्मान के लिए कोई ऐसा काम नहीं करना चाहेगी जिससे इसके आत्मसम्मान पर चोट पहुँचे। वह अपने पति के दुर्बल विचारों से भलीभाँति अवगत है, फिर भी आत्मसम्मान की रक्षा हेतु उसे युद्ध में जाने के लिए प्ररित करती है। वह सुन्दर है जिसे प्राप्त करने के लिए देवगुप्त और ग्रहवर्मा आपस में दुश्मनी मोल ले बैठते हैं। उसके रूपाकर्षण में शांतिभिक्षु भी है। राज्यनीति कहीं भी खुलकर इनका विरोध और इनसे संघर्ष करती नहीं दिखाई देती। जब देवगुप्त राज्यश्री को बन्दी बनाता है तब जाकर वह अपने बचाव हेतु देवगुप्त के ऊपर खड़ग से वार करती है। चूँकि प्रसाद जी समकालीन समय में यह नाटक लिख रहे थे। इसलिए तत्कालीनता में समकालीन भाव भरते हुए सती प्रथा के विरोध में उन्होने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। राज्यश्री मरने के लिए तत्पर होती है, पुनः अपने को सँभालते हुए चिता से हटकर कहती है– 'भाई! तुम भी! नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं तुम्हारे लिए जीवित रहूँगी।'[5]

निष्कर्ष

हमारी भारतीय संस्कृति समन्वयवादी है और यही कारण है कि मिश्र, असीरिया, बेबीलोनिया आदि देशों की संस्कृति और सभ्यता विलीन हो गई और भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। इसलिए प्रसाद ने स्त्री–पुरुष बीच भी समन्वय को आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य माना। इनके स्त्री पात्र विविध क्षेत्रों जैसे– आध्यात्मिक समन्वय समरसता, राजनीति, कूटनीति, युद्ध आदि में महत्ता हासिल करते हुए स्त्री–अस्मिता की छाप छोड़ते हैं। इस प्रकार प्रसाद के नाटकों के स्त्री पात्रों में स्त्री–अस्मिता के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ–सूची –

1. 'शब्दार्थ–विचार कोश, सम्पादक रामन्द्र वर्मा, पृ॰–335
2. 'भारत इतिहास', रोमिला थापर, पृ॰–115
3. वही, पृ॰–49
4. वही, पृ॰–19
5. वही, पृ॰–19